International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Vol. 8 Issue 1, January- 2018
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 6.939

मानवता एवं धार्मिक परिप्रेक्ष्य में स्वामी विवेकानन्द के विचारों की सारगर्भिता

लेखकः डॉ. मन्जू जौहरी[1], बिमल कुमार[2]

[1] डॉ. मन्जू जौहरी, एसोसिएट प्रोफेसर, डी. वी. सी. उरई
[2] बिमल कुमार, शोधार्थी, इतिहास विभाग, बुन्देलखण्ड़ विश्वविद्यालय, झाँसी

प्रस्तावना

भारतीय संस्कृति सदैव से धर्म प्रधान रही है। वास्तव में धर्म ही सम्पूर्ण संस्कृति का आधार है। सांख्य दर्शन में धर्म के सम्बन्ध में लिखा है "यतोभ्युदय निःश्रेयस सिद्धिः स धर्मः" अर्थात् अभ्युदय की प्राप्ति तथा निःश्रेयस की सिद्धि ही धर्म है। अभ्युदय से तात्पर्य है– भौतिक लाभ तथा निश्रेय से तात्पर्य है – आध्यात्मिक कल्याण। संक्षेप में धर्म वह है जो व्यक्ति का लौकिक एवं अलौकिक कल्याण करे।

धर्म का मानव जीवन में इतना अधिक महत्त्व है कि हम बिना 'धर्म' शब्द का वास्तविक अभिप्राय समझे इसका प्रयोग करते रहते हैं। प्रायः हम धार्मिक अनुभूतियों, धार्मिक क्रियाकलापों, धार्मिक परम्पराओं, धार्मिक रीति–रिवाजों और धार्मिक विश्वासों आदि शब्दों का प्रयोग करते हैं, परन्तु जितना अधिक धर्म शब्द का प्रयोग होता है, इसकी परिभाषा देना उतना ही कठिन है।

विवेकानन्द ने धर्म के दो पक्षों में भेद कर लेना उचित बताया है। धर्म के ये दो पक्ष हैं– "आन्तरिक पक्ष और बाह्य पक्ष।" (समकालीन भारतीय दर्शन, 50) धर्म का बाह्य पक्ष कर्मकांड से संबंधित है, जिसमें हम पूजा–पाठ, हवन आदि से प्रकृति में निहित शक्ति की पूजा कर अदृश्य शक्ति की ओर बढ़ना चाहते हैं । धर्म का यह बाह्य पक्ष अनावश्यक या अप्रासंगिक नहीं है । वास्तव में धर्म का यह बाह्य पक्ष तब अर्थपूर्ण हो जाता है जब उसे आन्तरिक समर्थन प्राप्त रहता है । आन्तरिक पक्ष के अन्तर्गत मानव के धार्मिक विश्वास, विचार, श्रद्धा आदि का समावेश होता है। अतः विवेकानन्द ने धर्म के आन्तरिक पक्ष को

धार्मिक अनुभूति कहा है और उनके अनुसार धर्म की विशिष्टता को समझने के लिए बाह्य पक्ष के स्थान पर आन्तरिक पक्ष पर ध्यान केन्द्रित करना आवश्यक है ।

विवेकानन्द का कथन है, "धर्म मानवता की आत्मा में ही आधारभूत रूप में है और जो भीतर है, समस्त जीवन उसी का विकास है, इसलिए विभिन्न जातियों और राष्ट्रों के माध्यम से धर्म अपने को अनिवार्यतः प्रकट करता है ।" (*वि॰ सा॰,* 9/159) आत्मा की भाषा एक है, राष्ट्रों की भाषाएँ अनेक हैं, उनके रीति–रिवाज और जीवन–प्रणाली एक दूसरे से बहुत भिन्न हैं । धर्म जो है आत्मा की वस्तु है और वह विभिन्न राष्ट्रों, भाषाओं तथा रीति–रिवाजों के माध्यम से अपने को प्रकट करता है और प्रकटीकरण के इस प्रक्रम में जो व्यक्ति, समाज व राष्ट्र इसके बाह्य रूप पर अटक जाते हैं, वे अपनी बाह्य उन्नति तो बाधित करते ही हैं, इसके साथ–साथ अपनी आन्तरिक क्षमताओं के प्रस्फूटन में भी वे स्वयं ही बाधा बन जाते हैं । ऐसे में धर्म हिंसा, शोषण, ऊँच–नीच एवं युद्धों का कारण भी बन जाता है । विवेकानन्द ने हमें कदम–कदम पर इनके प्रति सावधान किया है ।

विवेकानन्द हमें बताते हैं कि हमारे देश में मोक्ष–प्राप्ति की इच्छा प्रधान है, पाश्चात्य देश में धर्म की प्रधानता है । हम मुक्ति चाहते हैं, वे धर्म चाहते हैं । अब प्रश्न यह है कि धर्म क्या है? तो विवेकानन्द मीमांसकों की भाषा में इन प्रश्न के उत्तर में कहते हैं, "धर्म वही है जो इस लोक और परलोक में सुख–भोग की प्रवृत्ति दे । धर्म क्रियामूलक होता है । वह मनुष्य को दिन–रात सुख के पीछे दौड़ाता है तथा सुख के लिए काम कराता है ।" (*वि॰ सा॰,* 10/50) इस संसार में भोग–प्राप्ति तथा इसके पश्चात् जो मोक्ष की अनुभूति करवाए वही मोक्ष है ।

मानव–कल्याण का स्वरूप

धर्म के सम्बन्ध में जैसा कि विवेकानन्द ने स्पष्ट किया है कि धर्म का अर्थ न गिरजे में जाना है, न ललाट रँगना है, न विचित्र ढंग का वेश धारण करना है । इन्द्रधनुष के रंगों से तुम अपने को चाहे भले ही रंग लो किन्तु यदि तुम्हारा हृदय उन्मुक्त नहीं हुआ है, यदि तुमने ईश्वर का साक्षात्कार नहीं किया है, तब यह सब व्यर्थ है । जिसने हृदय को रंग लिया है, उसके लिए दूसरे रंग की आवश्यकता ही नहीं । यही धर्म का सच्चा अनुभव है।

विवेकानन्द के अनुसार जिस व्यक्ति ने आत्म–अनुभूति प्राप्त कर ली है, वही सही अर्थ में मानवतावादी हो सकता है और सच्चे अर्थों में वही मानव की सेवा कर सकता है । लोभ, मोह, घृणा, द्वैष आदि में लिप्त मनुष्य समाज की सेवा नहीं कर सकता जबकि वास्तविकता तो यह है कि जिसने आत्मा को पहचाना है, जो यह जानता है कि एक ही सत्ता सब में वर्तमान है, वही निःस्वार्थ रूप में समाज की सेवा कर सकता है । जो यह समझता है कि एक ही आत्मा सब में व्याप्त है, वही मानवता की सेवा कर सकता है ।

विवेकानन्द के अनुसार शास्त्रों में भी बार–बार यही कहा गया है कि बहिरिन्द्रियों के ज्ञान के द्वारा धर्म कभी प्राप्त नहीं हो सकता। धर्म वही है, जो हमें उस अक्षर पुरुष का साक्षात्कार करवाए और हर एक के लिए धर्म यही है । जिसने इस इन्द्रियातीत सत्ता का साक्षात्कार कर लिया, जिसने आत्मा का स्वरूप उपलब्ध कर लिया, जिसने भगवान् को प्रत्यक्ष देखा और हर वस्तु में देखा, वह ऋषि हो गया और तुम्हारा जीवन तब तक धर्मजीवन नहीं, जब तक तुम ऋषि नहीं हो जाते और तभी तुम्हारे वास्तविक धर्म (प्रकृत्ति धर्म) का आरम्भ होगा, अभी तो ये सब तैयारियाँ ही हैं । उसके बाद ही तुम्हारे भीतर धर्म का प्रकाश फैल सकेगा, अभी तो तुम केवल मानसिक व्यायाम कर रहे हो और शारीरिक कष्ट झेल रहे हो।

विवेकानन्द बताते हैं कि हमें इस बात को सदैव याद रखना चाहिए कि यदि हम मुक्ति प्राप्त करना चाहते हैं, हमें ऋषित्व को प्राप्त करना है, मन्त्रद्रष्टा होना और ईश्वर साक्षात्कार करना है तो धर्म की शरण में गए बिना ये सब असम्भव है ओर इस बात पर जितनी जल्दी विश्वास किया जाए, भारत और समग्र संसार का उतना ही अधिक हित होगा । विवेकानन्द का मत है 'मनुष्य जो सोचता है, वास्तव में वही बन जाता है ।'

धर्म और सामाजिक विकास

विवेकानन्द के सामाजिक विकास के विचारों पर प्रकाश डालने से पहले सामान्यतः सामाजिक विकास का अर्थ समझना आवश्यक है। सामाजिक विकास एक बहुआयामी पद है । इसे कुछ निश्चित परिभाषाओं और सीमाओं के अन्तर्गत देखना कठिन है । सामाजिक विकास को परिभाषित करने से पहले विकास को जानना जरूरी है । विकास का अर्थ एक

निश्चित स्थिति से आगे की ओर प्रगति, परिवर्तन और उन्नति से है और प्रगति, परिवर्तन की मात्रा और गुण दोनों स्पष्ट रूप से दिखाई देने चाहिए । समाज के हर तबके की उसमें हिस्सेदारी हो, कोई वंचित या छूट गए लोग नहीं होने चाहिए। तभी माना जा सकता है कि विकास की दिशा और दशा सही जा रही है ।

अतः सामाजिक विकास सामाजिक परिवर्तन की एक महत्त्वपूर्ण अवधारणा है जिसके द्वारा परिवर्तन के रूप तथा दिशा की निश्चित ढ़ंग से व्याख्या की जा सके । यह एक समग्र प्रक्रिया है जो अपने भीतर एक निश्चित समाज की समस्त संरचनाओं और आयु, लिंग, सम्पत्ति तथा संस्थाओं जैसे परिवार, मनुष्य, जाति, वर्ग, धर्म, शिक्षा आदि को समेटे हुए है । विवेकानन्द के शब्दों में जब सामाजिक विकास की बात आती है तो ज्ञात होता है – 'उनका आदर्श राष्ट्रीय मार्ग पर समाज की उन्नति, विस्तृत और विकास है।' उनका कथन है कि राष्ट्रीय जीवन को जिस ईंधन की जरूरत है, देते रहो । फिर वह अपने ढंग से उन्नति करता रहेगा । कोई और उसकी उन्नति का मार्ग निर्दिष्ट नहीं कर सकता । हमारे समाज में बहुत बुराईयाँ है परन्तु ऐसा नहीं है कि दूसरे समाजों में बुराईयाँ नहीं है । यदि भारतीय और पाश्चात्य देश की तुलना की जाए तो ज्ञात होता है कि यहाँ का जीवन गरीबी की चपेटों से जर्जरित है, तो वहाँ पर लोग विलासिता के विष से जीवन्मृत हो रहे हैं । भारत में लोग इसलिए आत्महत्या करना चाहते हैं कि उनके पास खाने के लिए कुछ नहीं है तो वहाँ पर खाद्यान्न की प्रचुरता के कारण लोग आत्महत्या करते हैं अर्थात् गरीबी सामाजिक विकास के मार्ग में बहुत बड़ी बाधा है । अतः विवेकानन्द के मत में 'ये सामाजिक बुराईयाँ उस पुराने वात–रोग की तरह है जिसे पैर से हटाओ तो वह सिर में चला जाता है और फिर वहाँ से शरीर के किसी दूसरे भाग में । उसे केवल एक जगह से दूसरी जगह ही भगाया जा सकता है । अतः बुराईयों के निराकरण की चेष्टा करना ही सही उपाय नहीं है ।' (*वि॰ सा॰,* 5/108) क्योंकि बुराईयाँ तो कोई भी दिखा सकता है । वास्तव में मानव–समाज का सच्चा हितैषी तो वह है जो इन कठिनाइयों से बाहर निकलने का उपाय बताए ।

उद्देश्य

प्रस्तुत शोध प्रपत्र उद्देश्य निम्नलिखित हैः

1. स्वामी विवेकानन्द जी के मानव कल्याण हेतु व्यक्त किए गये आदर्श विचार का अध्ययन करना।
2. स्वामी जी के विश्व व भारतीय परिप्रेक्ष्य में धर्म के सार का अध्ययन करना।
3. धार्मिक एवं मानवता के सम्बन्धित स्वामी जी के वैचारिक कृत्यों का विश्लेषणात्मक अध्ययन करना।
4. विवेकानन्द जी के सभी धर्मों में व्याप्त बाह्य आंडम्बरों का निष्पादन रूपी विचारों का आंकलन करना।

साहित्य पुनरावलोकन

किसी भी क्षेत्र का साहित्य उस आधारशिला के समान होता है, जिस पर सपूंर्ण भावी शोध आधारित होता है यदि सबंधित साहित्य के सर्वेक्षण द्वारा इस नींव को दृढ़ नहीं कर लेते तो यह शोध कार्य के प्रभावहीन एवं महत्वहीन हो सकते है।

गुप्ता, आर. पी. (1985) द्वारा रूहले खण्ड़ विश्वविद्यालय बरेली से शिक्षाशास्त्र विषय में पी.एच.डी. उपाधि हेतु **''स्वामी विवेकानन्द के शैक्षिक दर्शन का अध्ययन''** नामक शीर्षक पर शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया गया था। शिक्षा के सम्बन्ध में उनके विचार निम्नवत थे :–

- शिक्षा जीवन के लिए तैयार करे, शिक्षा द्वारा राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय भावना का विकास किया जाए।
- निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा हो।
- मातृभाषा द्वारा शिक्षा प्रदान की जाए।
- स्वावलम्बी बनाने वाली शिक्षा पर बल दिया जाए।
- सभी के लिए शिक्षा के समान अवसर उपलब्ध हो तथा शिक्षा मोक्ष प्राप्ति की ओर प्रेरित करे।

- पाठ्यक्रम में धार्मिक शिक्षा, शारीरिक प्रशिक्षण दर्शन, भूगोल, इतिहास, विज्ञान, तकनीकी विषय, व्यावसायिक प्रशिक्षण, कला संगीत, गृह विज्ञान आदि को स्थान दिए जाए।

मिश्रा, शिव सरन (1986) द्वारा अवध विश्वविद्यालय, अवध से शिक्षा शास्त्र विषय में पी.एच.डी. उपाधि हेतु **''स्वामी विवेकानन्द के शैक्षिक दर्शन और शिक्षण विधि का आलोचनात्मक अध्ययन''** नामक शीर्षक पर शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया गया था। जिसके प्रमुख निष्कर्ष निम्नवत् है :–

- स्वामी जी का विश्वास था कि संसार के सभी धर्मो का आधार प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से वेदान्त दर्शन पर आधारित है वेदान्त दर्शन का आधार व्यास सूत्र था। इसके तीन भाष्यों, द्वैत, विशिष्टद्वैत और अद्वैत में से स्वामी जी अद्वैत के समर्थक थे।
- स्वामी जी मानवता को दुःख और नैराशय से मुक्त करना चाहते थे। वे यह भी चाहते थे कि मनुष्य आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न हो। शिक्षा इन उद्देश्यों को प्राप्त करने का साधन मात्र थी।
- स्वामी जी के अनुसार शिक्षा मात्र विभिन्न सूचनाओं का संग्रह नहीं वरन् व्यक्ति की आन्तरिक शक्तियों का प्रगटन है।
- आध्यात्मिक शिक्षा के साथ–साथ स्वामी जी ने व्यावसायिक शिक्षा को भी महत्व दिया है विस्तृत अर्थ में यह उनके पाठ्यक्रम योजना का अधार था।
- स्वामी जी द्वारा समर्थित शिक्षण विधियों में केन्द्रीकरण, स्व–अनुभव प्रश्नोत्तर एवं सम्बन्ध विधि प्रमुख थी। ये विधियाँ आधुनिक परिप्रेक्ष्य में सामान्य रूप से उपयोगी सिद्ध हुई है।
- स्वामी जी के विचार आदर्शवाद एवं प्रगतिवाद के बीच सन्तुलन स्थापित करने वाले है तथा वर्तमान भारतीय व्यवस्था में बहुत उपयोगी है।

अभ्यकंर, एस. वी. (1987) द्वारा पूना विश्वविद्यालय, पूना से शिक्षाशास्त्र विषय में पी. एच.डी. उपाधि हेतु, **''स्वामी विवेकानन्द के शैक्षिक विचारों एवं दार्शनिक आधारों पर परमाणु अंतरिक्ष युग तथा विश्वव्यापी मूल्य संकट के युग में मूल्य–शिक्षा के विशेष सन्दर्भ में तथा वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भारत में मूल्य शिक्षा की आवश्यकता का विस्तृत, गहन एवं**

आलोचनात्मक विश्लेषण'' नामक शीर्षक पर शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया गया था। जिसके प्रमुख निष्कर्ष निम्नवत् है :–

- विवेकानन्द के शैक्षिक दृष्टिकोण के आकस्मिक एवं खण्डयुक्त प्रकाशन के बावजदू उनके शैक्षिक वक्तव्यों एवं लेखों में आत्मानुभूति का विचार विशेष महत्व का है।
- सामान्यतः भारतीय दर्शन और विशेष रूप से अद्वैत वेदान्त का आधुनिक नाभिकी भौतिकी से मान्य प्रांसगिकता एवं सादृश्य सम्बन्ध है।
- सामाजिक एवं धार्मिक समस्याओं के प्रभावशाली हल के लिए उन्होने सुधार के बाह्य उपायों की अपेक्षा आन्तरिक विस्तार को विशेष रूप से प्राथमिकता दी है।

शर्मा, शबनम (1995) द्वारा चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय मेरठ से शिक्षाशास्त्र विषय में पी.एच.डी. उपाधि हेतु **''स्वामी दयानन्द और विवेकानन्द के शैक्षिक विचारों को आधुनिक भारतीय शिक्षा के सन्दर्भ में एक समीक्षात्मक अध्ययन''** नामक शीर्षक पर शोध प्रस्तुत किया गया था। जिसके प्रमुख निष्कर्ष निम्नवत है :–

- स्वामी विवेकानन्द एवं स्वामी दयानन्द के शैक्षिक विचार उस समय प्रस्तुत किये गये थे जब देश परतंत्र था परन्तु शिक्षा सम्बन्धी विचार आज भी उतने ही समीचीन है स्वामी दयानन्द एवं स्वामी विवेकानन्द की दृष्टि से समाज के नवनिर्माण का कार्य आध्यात्मिक मूल्यों के द्वारा ही संभव है।
- स्वामी विवेकानन्द ने अपने शैक्षिक विचार विभिन्न व्याख्यानों, क्रियाकलापों तथा रचनाओं के माध्यम से प्रस्तुत किये है।

कनकड़, प्रभा (1997) द्वारा शिक्षाशास्त्र विषय में पी.एच.डी. उपाधि हेतु **''स्वामी विवेकानन्द एवं डॉ. एनी बेसेन्ट के शैक्षिक विचारों का तुलनात्मक अध्ययन''** नामक शीर्षक पर शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया था। जिसके प्रमुख निष्कर्ष निम्नवत् है :–

- स्वामी विवेकानन्द तथा डॉ. एनी बेसेन्ट ने भारत में प्राचीन गौरव व संस्कृति को पुनः स्थापित करने का सतत् प्रयास किया।
- विश्व बन्धुत्व व विश्वैक्य भावना का विकास दोनों शिक्षाविदों ने आवश्यक बताया।

- इनका मानना है कि मनोवैज्ञानिक आधार पर मानव की समस्त योग्यताओं व क्षमताओं को शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं संवेगात्मक श्रेणी में विभाजित किया जाता है।
- विभिन्न धर्मों के अध्ययन के साथ–साथ विभिन्न दर्शन, साहित्य व विज्ञान का तुलनात्मक अध्ययन किये जाने का समर्थन दोनों विचारकों ने किया है।

शोध पद्धति

कार्य के लिये ऐतिहासिक, समाज शास्त्रीय, साक्षात्कार इत्यादि शोध पद्धतियों का सहारा लिया गया। इस परियोजना के अध्ययन के लिये आगमन और निगमन दोनों शोध पद्धतियों का सहारा लिया जायेगा। यहां इस बात का विशेष ध्यान रखा जायेगा कि बदलते परिदृश्य में मानव के समक्ष जन्मी नयी–नयी समस्याओं एवं घटनाओं के उपायो व सुझावों के सन्दर्भ में स्वामी की विचारों की क्या प्रसंगिकता है, इसके लिए 1. शोध सामग्री एकत्रित करना, 2. सामग्री की जांच करना, 3. क्रमबद्ध लेखन एवं 4. प्रतिवेदन (शोध प्रबन्ध का तैयार करना) को सम्मिलित किया गया।

उपसंहार

सार रूप में कहा जा सकता है कि विवेकानन्द की दृष्टि में धर्म का अर्थ आध्यात्मिकता को जागृत करना है, या अपने अन्तर में 'ईश्वरत्व' को जगाना है । उनके अनुसार धर्म के स्वरूप को समझने के लिए पहले 'धार्मिकता' को समझना आवश्यक है । धार्मिकता धर्मबोध है, धार्मिक चेतना है । यह एक विशेष प्रकार की आन्तरिक अनुभूति है जिसकी हर प्रकार की अभिव्यक्ति 'धर्म' का स्वरूप स्पष्ट करती है । वे कहते हैं कि धार्मिकता की अनुभूति, धार्मिक चेतना सार्वभौम है, हर व्यक्ति में है जो लोग अपने आप को नास्तिक कहते हैं, उनमें भी धार्मिकता की अनुभूति विद्यमान है। जैसे बुद्ध तथा महाबीर में भी धार्मिकता की अनुभूति विद्यमान है।

निष्कर्ष रूप में यही कहा जा सकता है कि किसी भी दूसरे देश की अपेक्षा भारत की समस्याएँ अधिक जटिल व बड़ी है । जाति, धर्म, भाषा, शासन प्रणाली – ये ही एक साथ मिलकर एक राष्ट्र की सृष्टि करते हैं । यदि अन्य राष्ट्रों से तुलना की जाए तो ज्ञात होता है कि जिन उपादानों से संसार के दूसरे राष्ट्र संगठित हुए है, वे संख्या में यहाँ के

उपादानों से कम है । विवेकानन्द की दृष्टि में, "हमारे पास एकमात्र सम्मिलन भूमि है – वह है हमारी पवित्र परम्परा और हमारा धर्म ।" (*वि॰ सा॰,* 5/180) एकमात्र सामान्य आधार वही है जिन पर हमें संगठन करना होगा । लोगों में जो मतभेद और विवाद है, उनको अपने हित के लिए, अपनी जाति के 68 हित के लिए त्यागना होगा और यह तभी होगा, जब सभी मनुष्य एक ही धर्म को स्वीकार करेंगे । अतः भारत के भविष्य संगठन की पहली शर्त के तौर पर धार्मिक एकता की आवश्यकता है ।

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 8 Issue 1, January- 2018
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 6.939 |

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. लाल, बसन्त कुमार, *समकालीन भारतीय दर्शन,* नई दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास, 1993

2. स्वामी विवेकानन्द, *विवेकानन्द साहित्य,* कोलकाता, भाग–9, अद्वैत आश्रम, 5 डिटी एण्टाली रोड़, 1963, पुनर्मुद्रण, 2004

3. स्वामी विवेकानन्द, *विवेकानन्द साहित्य,* कोलकाता, भाग–5, अद्वैत आश्रम, 5 डिटी एण्टाली रोड़, 1963, पुनर्मुद्रण, 2004

4. स्वामी विवेकानन्द, *विवेकानन्द साहित्य,* कोलकाता, भाग–4, अद्वैत आश्रम, 5 डिटी एण्टाली रोड़, 1963, पुनर्मुद्रण, 2004

5. स्वामी विवेकानन्द, *विवेकानन्द साहित्य,* कोलकाता, भाग–3, अद्वैत आश्रम, 5 डिटी एण्टाली रोड़, 1963, पुनर्मुद्रण, 2004

6. स्वामी विवेकानन्द, *विवेकानन्द साहित्य,* कोलकाता, भाग–2, अद्वैत आश्रम, 5 डिटी एण्टाली रोड़, 1963, पुनर्मुद्रण, 2004

7. स्वामी विवेकानन्द, *विवेकानन्द साहित्य,* कोलकाता, भाग–10, अद्वैत आश्रम, 5 डिटी एण्टाली रोड़, 1963, पुनर्मुद्रण, 2004

8. *भगवद्गीता,* 2 / 23
9. सिंह, शिव भानु, *धर्म–दर्शन का आलोचनात्मक अध्ययन,* इलाहाबाद, शारदा पुस्तक भवन, 2004

10. *महर्षि कणाद,* वैशेषिक सूत्र

11. *कठोपनिषद,* 1 / 3 / 14